Shodh Sangam Patrika
E-ISSN: 3049-0707, Volume 3 | Issue 2 | (April – June 2026)

हिन्दुस्तानी संगीत में फिल्मों का योगदान

डॉ. प्रियंका कुमारी
संगीत शिक्षक, उच्च माध्यमिक विद्यालय, थरूआही, लौकही, मधुबनी।

शोध-सार

आज के युग में सिनेमा एक ऐसी विधा है, जिसकी ओर दो साल का एक बच्चा और अस्सी साल का एक बूढ़ा भी आकर्षित है। महानगर से लेकर छोटे कस्बे तक का व्यक्ति भी इसके सम्मोहन से अछूता नहीं है। सिनेमा अपने आप में एक सम्पूर्ण विधा है, क्योंकि इसमें चित्रकला, नाट्य कला, काव्य कला, कथा साहित्य आदि सभी कलाओं का समावेश रहता है। आज हम जो सिनेमा देखते हैं, वह हमारे सामने एक विकसित और परिष्कृत रूप में है; इसके पीछे एक सदी का परिश्रम है। वर्तमान समय में सिनेमा ने उद्योग का रूप ले लिया है, परन्तु इसने हमें न केवल मनोरंजन दिया है, बल्कि शिक्षा भी दी है। इसलिए यह जनमानस की भावनाओं को व्यक्त करने का सशक्त माध्यम बन गया है। इसलिए यह कहना गलत न होगा कि "फिल्में मनोरंजन का उत्तम माध्यम तो हैं ही, साथ ही वे ज्ञानवर्धन के लिए भी अत्यंत बेहतरीन माध्यम हैं।"

मुख्य शब्दः- फिल्म, संगीत, सांस्कृतिक, सिनेमा, प्रदर्शन, फोटोग्राफ

मूल आलेख

फिल्म प्रौद्योगिकी का इतिहास गति-चित्रों की रिकॉर्डिंग, निर्माण और प्रस्तुति की तकनीकों के विकास को दर्शाता है। जब 19वीं शताब्दी में फिल्म का आविष्कार हुआ, तब तक परछाईं के खेल और मैजिक लैंटर्न के माध्यम से चलती-फिरती छवियों को प्रदर्शित करने की सदियों पुरानी परंपरा पहले से ही प्रचलित थी, जो दुनिया के कई हिस्सों में दर्शकों के बीच बहुत लोकप्रिय थी। विशेष रूप से मैजिक लैंटर्न ने प्रक्षेपण प्रौद्योगिकी, प्रदर्शन प्रथाओं और फिल्म के सांस्कृतिक उपयोग को काफी प्रभावित किया। 1825 और 1840 के बीच स्ट्रोबोस्कोपिक एनीमेशन, फोटोग्राफी और स्टीरियोस्कोपी जैसी प्रासंगिक तकनीकों का परिचय हुआ। शताब्दी के शेष भाग में कई इंजीनियरों और आविष्कारकों ने इन सभी नई तकनीकों और प्रक्षेपण की बहुत पुरानी तकनीक को मिलाकर एक पूर्ण भ्रम या वास्तविकता का पूर्ण दस्तावेजीकरण करने का प्रयास किया।

इन प्रयासों में आमतौर पर रंगीन फोटोग्राफी भी शामिल थी और 1877 में फोनोग्राफ के आगमन से सिंक्रनाइज़्ड ध्वनि रिकॉर्डिंग की संभावना भी जगी। 1887 और 1894 के बीच पहली सफल लघु सिनेमाई प्रस्तुतियाँ स्थापित हुईं। इस तकनीक की सबसे बड़ी और लोकप्रिय उपलब्धि 1895 में पहली बार 10 सेकंड से अधिक अवधि की प्रोजेक्टेड फिल्मों के साथ सामने आई। इस उपलब्धि के बाद शुरुआती वर्षों में अधिकांश फिल्में लगभग 50 सेकंड की होती थीं। उनमें सिंक्रनाइज़्ड ध्वनि और प्राकृतिक रंगों का अभाव था और उन्हें मुख्य रूप से मनोरंजन के साधन के रूप में प्रदर्शित किया जाता था। 20वीं शताब्दी के शुरुआती दशकों में फिल्मों की अवधि काफी बढ़ गई और यह माध्यम तेजी से संचार और मनोरंजन के सबसे महत्त्वपूर्ण साधनों में से एक बन गया। सिंक्रनाइज़्ड ध्वनि की उपलब्धि 1920 के दशक के अंत में और पूर्ण रंगीन फिल्मों की उपलब्धि 1930 के दशक में हुई, हालांकि कई दशकों तक ब्लैक एंड व्हाइट फिल्में काफी प्रचलित रहीं। 21वीं शताब्दी की शुरुआत तक उत्पादन श्रृंखला के दोनों छोरों पर डिजिटल इमेज सेंसर और प्रोजेक्टर द्वारा भौतिक फिल्म स्टॉक को डिजिटल फिल्म तकनीकों से प्रतिस्थापित किया

जा रहा था।

सिनेमा के इतिहास पर एक दृष्टि डालें तो विदित होगा कि किस प्रकार विश्व के वैज्ञानिकों ने दिन-रात कठिन परिश्रम करके इसका आविष्कार किया। पूर्वी जर्मनी का एक गणितज्ञ जब गणित के किसी प्रश्न को हल कर रहा था, तब वह कुर्सी पर बैठा था और उसके सामने मेज पर एक लैम्प जल रहा था। सोचते-सोचते उसकी दृष्टि दीवार की ओर गई। वहाँ उसे अपनी टोपी की परछाईं दिखाई दी, जिसे देखकर घोड़े पर सवार मनुष्य का आभास हुआ। उसे देखकर उस युवक को अचम्भा हुआ और अच्छा भी लगा। वह तेजी से अपना सिर हिलाने लगा। ऐसा लग रहा था कि घुड़सवार भी तेजी से दौड़ रहा है और बस यहीं से चित्रपट बनाने की कहानी आरम्भ होती है। उसका नाम "एथनासियस किर्चर" था। सन् 1645 में उसने एक लालटेन बनाई, जिसे उसने जादुई लालटेन कहा। रेखांकित चित्रों को वह इस लालटेन के सम्मुख रखता और उसकी परछाईं दीवार पर दिखाता। चित्रपट का प्रथम प्रदर्शन यही था।

सिनेमा शब्द के पहले 19वीं शताब्दी में सिनेमा शब्द के स्थान पर "किनेमेटोग्राफ" शब्द का प्रयोग किया जाता था, जो यूनानी भाषा का एक शब्द है। इसमें "किनेमेटो" का अर्थ "गति" और "ग्राफ" शब्द का अर्थ आलेख या लिखना है। इसलिए इस शब्द का प्रयोग गति-विज्ञान से लिया गया है। फ्रेंच भाषा में किनेमेटोग्राफ का पर्यायवाची शब्द सिनेमेटोग्राफ है और इस शब्द का संक्षिप्त रूप सिनेमा आज भी प्रचलित है। फ्रांस ही पहला देश है जहाँ के देशवासियों को सबसे पहले सिनेमा देखने का अवसर मिला और 28 दिसम्बर 1895 को ल्यूमिएर ब्रदर्स ने एक मिनट तक सिनेमा के कुछ टुकड़े दर्शकों को दिखाए। भारत में सिनेमा पहुँचने में केवल 6 महीने लगे। ल्यूमिएर बंधुओं के प्रतिनिधि घुमन्तु बायोस्कोप के रूप में सिनेमा को बम्बई लाए।

15 अप्रैल 1911 का दिन एक ऐतिहासिक दिन था, क्योंकि इस दिन दादा साहब फाल्के ने बम्बई में अमेरिका इंडिया सिनेमा नाम के सिनेमाघर में "लाइफ ऑफ क्राइस्ट" फिल्म देखी और ठान लिया कि भारत में फिल्म बनानी है। 4 फरवरी 1912 को दादा साहब फाल्के इंग्लैंड गए और वहाँ उन्होंने सिनेमा निर्माण कला का गहराई से अध्ययन किया। दादा साहब फाल्के वहाँ से कैमरा और प्रिंटिंग मशीन लेकर भारत आए और सितम्बर 1912 में भारत की फिल्म राजा हरिश्चंद्र का निर्माण कर दिया। आठ महीनों तक बहुत कठिनाइयों का सामना करते हुए दिनांक 21 अप्रैल 1913 को इस फिल्म का ओलम्पिया थियेटर में विशेष प्रदर्शन हुआ, जिसमें देश के बड़े-बड़े उद्योगपति, वकील तथा जज इत्यादि उपस्थित थे। इस प्रकार दादा साहब फाल्के की क्रांति ने युग परिवर्तन कर दिया।

भारतीय सिनेमा के इतिहास को दो युगों में बाँटा गया है। पहला मूक सिनेमा युग सन् 1913 से 1931 तक तथा दूसरा सवाक सिनेमा युग सन् 1931 से अभी तक।

मूक सिनेमा युग

1970 तक दादा साहब फाल्के एकमात्र सिनेमा निर्माता थे, जिन्होंने 23 से भी अधिक फिल्मों का निर्माण किया तथा सभी फिल्मों के विषय पौराणिक कथा-साहित्य से ही चुने, ताकि आम दर्शक इन फिल्मों के चरित्रों को सरलता से पहचान सकें और इन फिल्मों को सभी धर्मों के लोग देख सकें। सिनेमा के इतिहास में तीसरा दशक बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इस दशक में सिनेमा उद्योग का रूप धारण कर चुका था।

सवाक युग

प्रथम भारतीय सवाक हिंदी फिल्म "आलम आरा" थी, जिसे फिल्म निर्माण संस्था इम्पिरियल कम्पनी ने 1931 में

बनाया था। इसके निर्माता अर्देशिर ईरानी थे। इस फिल्म का प्रदर्शन 14 मार्च 1931 को "मैजेस्टिक सिनेमाघर" बम्बई में किया गया था। इस फिल्म के निर्माण की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि इसके निर्माण में किसी विदेशी तकनीशियन की सहायता नहीं ली गई थी। इस फिल्म में मास्टर विट्ठुल और जुबैदा ने अभिनय किया था। सवाक फिल्मों के आने के बाद धीरे-धीरे मूक फिल्मों का आकर्षण हट गया और अंत में मूक सिनेमा युग की विदाई हो गई।

हिंदी सिनेमा में संगीत

मनुष्य का जीवन गीत-संगीत के बिना अधूरा है। खुशी के क्षणों में भी मनुष्य गीत गुनगुनाता है और दुःख के क्षणों में भी संगीत उसका मन बहलाता है। विश्व में अनेक प्रकार का संगीत विद्यमान है, परंतु भारतीय संगीत की अपनी बात ही निराली है। भारत में लोक संगीत, सुगम संगीत तथा शास्त्रीय संगीत—ये तीनों विशेष तौर पर प्रचलित हैं। लोक संगीत अर्थात् किसी विशेष क्षेत्र में प्रचलित संगीत, जो जन-साधारण की भावनाओं को सरलता से अभिव्यक्त करने वाला होता है और इसमें किसी भी प्रकार की कृत्रिमता नहीं रहती। सुगम संगीत भी जन-साधारण का संगीत है, परंतु इसमें शहर और गाँव का कोई भेद नहीं है। इसलिए इसकी कोई भाषा या कोई विशेष क्षेत्र नहीं होता। लोक संगीत में जहाँ सादगी होती है, वहीं सुगम संगीत में विभिन्न सौंदर्यपूर्ण अलंकरणों का प्रयोग किया जाता है। शास्त्रीय संगीत विधा एक विशिष्ट वर्ग के लिए रही है, इसलिए इसे अभिजात संगीत भी कहते हैं।

आधुनिक समय में संगीत के तीनों प्रकारों को मिलाकर एक नया संगीत तैयार हुआ है, जिसे चित्रपट या फिल्मी संगीत कहते हैं। चित्रपट संगीत ने हमारे देश में जैसा तहलका मचाया हुआ है, उसकी मिसाल विश्व में कहीं नहीं मिलती। चित्रपट संगीत ने जिंदगी के उतार-चढ़ाव से परेशान और मायूस एक आम इंसान को भी भावना और कल्पना के समुद्र में डुबकियाँ लगाना सिखाया। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगी कि फिल्मी संगीत ही है, जिसने शास्त्रीय संगीत को जनसाधारण तक पहुँचाया। बैजू-बावरा, वसंत बहार, झनक झनक पायल बाजे आदि फिल्मों के शास्त्रीय संगीत के गीतों ने जनसाधारण के मन को प्रभावित किया है। इससे पहले शास्त्रीय संगीत एक विशेष वर्ग पर ही अपनी गायिकी का असर छोड़ पाता था। फिल्मों में जितना महत्त्व कथावस्तु का है, उतना ही महत्त्व संगीत का भी है। फिल्मों में यह महत्त्व दो प्रकारों से प्रभाव डालता है—पहला प्रत्यक्ष रूप से और दूसरा अप्रत्यक्ष रूप से। प्रत्यक्ष रूप से आने वाला संगीत फिल्मों के गीत के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है और वह परदे पर नायक-नायिका पर फिल्माया जाता है, जिसे वे अपने अभिनय से और अधिक प्रभावपूर्ण बना देते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से आने वाला संगीत किसी प्रसंग विशेष के भाव या स्थिति को प्रकट करने के लिए होता है, जैसे—अंधेरी रात का सन्नाटा दर्शाने के लिए किन्हीं विशेष वाद्य यंत्रों का प्रयोग करना।

हिन्दी फिल्मों के इतिहास पर नज़र डालें तो ज्ञात होता है कि जिन फिल्मों में शास्त्रीयता पर आधारित गीत-संगीत का प्रयोग किया गया, उन्हें बहुत प्रशंसा प्राप्त हुई और उनके सभी संगीतकारों को आम जनता में विशेष नाम मिला। विशेषकर वर्ष 1940 से वर्ष 1962 तक की फिल्मों का गीत-संगीत शास्त्रीय संगीत पर ही आधारित रहा, जैसे—बैजू-बावरा, झनक-झनक पायल बाजे, गूँज उठी शहनाई, मुग़ल-ए-आज़म, संगीत सम्राट तानसेन इत्यादि। 1962 के बाद फिल्मी संगीत में परिवर्तन आने लगा। शास्त्रीय संगीत के साथ-साथ सुगम संगीत का भी प्रयोग अधिक होने लगा। फिल्मों में शास्त्रीय संगीत का प्रयोग वहीं तक किया जाने लगा जहाँ तक फिल्म के दृश्य की आवश्यकता होती।

जब 70-80 के दशक में फिल्मी संगीत कम और शोर-शराबा ज्यादा होने लगा, तब कुछ फिल्म निर्माताओं ने

अच्छी फिल्मों का निर्माण करने की ठानी और कुछ संगीतकारों ने शास्त्रीय संगीत का आधार देकर फिल्मी गीतों को नया जीवन दिया, जैसे—आलाप, सुरसंगम, लेकिन, शबाब, मेरी सूरत तेरी आँखें, अनुराधा इत्यादि फिल्में इसका सबसे अच्छा उदाहरण हैं।

नए मीडिया और डिजिटलीकरण के उदय ने विभिन्न मीडिया के कई पहलुओं को फिल्म के साथ ओवरलैप कर दिया है, जिसके परिणामस्वरूप फिल्म की परिभाषा के बारे में विचारों में बदलाव आया है। फिल्म और टेलीविजन में अंतर करने के लिए फिल्म आमतौर पर लाइव प्रसारित नहीं होती है और प्रायः एक स्टैंडअलोन रिलीज़ होती है, या कम से कम किसी नियमित चल रहे शेड्यूल का हिस्सा नहीं होती। कंप्यूटर गेम के विपरीत फिल्म शायद ही कभी इंटरैक्टिव होती है। वीडियो और फिल्म के बीच का अंतर पहले माध्यम और छवियों को रिकॉर्ड करने तथा प्रस्तुत करने के लिए उपयोग की जाने वाली तकनीक से स्पष्ट होता था, लेकिन दोनों डिजिटल तकनीकों में विकसित हो गए हैं और अब कुछ ही तकनीकी अंतर बचे हैं। माध्यम चाहे जो भी हो, 'फिल्म' शब्द ज्यादातर अपेक्षाकृत लंबी और बड़ी प्रस्तुतियों को संदर्भित करता है, जिनका आनंद सिनेमाघर में बड़ी स्क्रीन पर बड़े दर्शकों द्वारा लिया जा सकता है। ये आमतौर पर भावनाओं से भरी कहानी बयां करती हैं, जबकि 'वीडियो' शब्द ज्यादातर छोटी, छोटे पैमाने की प्रस्तुतियों के लिए उपयोग किया जाता है, जो दर्शकों के लिए बनाई गई प्रतीत होती हैं। हिन्दी फिल्मों के गीत-संगीत का इतिहास केवल परिवर्तन का इतिहास नहीं, बल्कि पतन का इतिहास भी है। अतीत से निकलकर जब दृष्टि भविष्य की ओर जाती है, तो गीतों की मधुरता और अक्षर न जाने कहाँ खो जाते हैं। आज के गीतों में वह मिठास, वह दर्द और पवित्र प्रेम देखने को नहीं मिलता। आज वासना (अंग प्रदर्शन), मांसलता और अर्थहीन शब्दयुक्त गीतों ने संगीत को शोरगुल में बदल दिया है।

निष्कर्ष:-

आजकल संगीत और फिल्म आपस में इस तरह जुड़ गए हैं कि वे ऐसी कला का निर्माण कर रहे हैं, जो दर्शकों को भावनात्मक और सामाजिक स्तर पर प्रभावित करती है। इससे यह प्रश्न उठता है कि संगीत फिल्मों और उनके दर्शकों की किस प्रकार सेवा करता है? इस प्रश्न ने फिल्म उद्योग के विद्वानों, निर्देशकों और कार्यकर्ताओं की रुचि को आकर्षित किया है तथा फिल्मों में व्यक्त किए जाने वाले मूल्यों और कथाओं को गहराई से प्रभावित किया है। व्यापक अध्ययनों और शोधों ने विभिन्न दृष्टिकोणों को बढ़ावा दिया है। अंततः इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि संगीत फिल्म में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है और साथ ही फिल्में संगीत की शक्ति को बढ़ाती हैं। ध्वनियाँ और संगीत फिल्मों में वातावरण, स्वर और पात्रों को आकार देते हैं तथा फिल्म क्लिप संगीत ध्वनियों को अधिक कोमल भावनाओं और संवेदनाओं में बदल देते हैं। यह गतिशील संबंध इन दो कला रूपों के मिश्रण के महत्त्व को उजागर करता है।

सन्दर्भ सूची:-

1. गर्ग, प्रभुलाल, फिल्मी संगीत, पृ. सं. 42.
2. भावसार, प्रो. गौरांग, भारतीय लोकसंस्कृति एवं लोककला, पृ. सं. 111.
3. पण्डेय, डॉ. अनुराधा, हिन्दी सिनेमा और उसका अध्ययन, पृ. सं. 9.
4. प्रसाद, विश्वेश्वर, संगीत सुदर्शन, पृ. सं. 129.
5. वर्मा, सरस्वती, संगीत का समाजशास्त्र, पृ. सं. 87.